भूमिका

सयाना हाथी

...राष्ट्रों की समृद्धि और निर्धनता के कारण हैं- राजनैतिक अर्थव्यवस्था में सभी जांच-पड़तालों का श्रेष्ठ लक्ष्य।

माल्थस का पत्र रिकार्डो
के नाम, 26 जनवरी, 1817

किसी भी राष्ट्र की उन्नति की दिशा में एक महान और आकर्षक कदम है, उसका गरीबी से समृद्धि और पारम्परिकता से आधुनिकता की ओर बढ़ना। 1991 के आर्थिक सुधारों के बाद भारत अभी हाल ही में सनसनीखेज रूप से मुक्त बाजार तंत्र के रूप में उभरा है और इसने विश्वव्यापी सूचना अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में खुद को बढ़ाना और फैलाना शुरू कर दिया है। औद्योगिक क्रान्ति को पिछले पचास वर्षों से निरंतर घुन की तरह चाटने वाला 'पुराना केन्द्रीय नौकरशाही शासन' अब धीमी गति से ही सही किन्तु निश्चित तौर पर अन्त की ओर बढ़ रहा है। साथ ही लोकतन्त्रीय शासन से निम्न जातियों का उत्थान भी धीरे-धीरे होने लगा है। आर्थिक और सामाजिक बदलाव का यही आयाम इस पुस्तक की विषय वस्तु है। कुल मानव समाज के छठे हिस्से का, प्रतिष्ठा तथा खुशहाली के लिए संघर्ष, मुझे एक बहुत ऊंची व्यवस्था का नाटक लगता है लेकिन सम्पूर्ण मानवता के सन्दर्भ में, संसार के भविष्य के लिए इसके परिणाम अच्छे भी हो सकते हैं, इसका अर्थ है कि विश्व में उदारतावाद के भविष्य पर नई रोशनी डालना।

जो कहानी मैं बताने जा रहा हूं वह एक सॉफ्ट प्ले है, जो भारतीय समाज के हृदय में शान्तिपूर्वक लेकिन गम्भीरता से चल रहा है। यह छोटी-छोटी किश्तों में प्रतिदिन हमारे सामने आता है जो कि नंगी आंखों से बमुश्किल दिख पाता है तथा हार्ड प्ले की अपेक्षा इसे अपनाना और भी मुश्किल है जो कि अधिक नाटकीय है। अधिकतर लोग भारत की आध्यात्मिकता और गरीबी को सहज ही स्वीकार कर लेते हैं किन्तु शान्त, सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति का यह रूप उन्हें भ्रमित करता है। आंशिक रूप से यह परिवर्तन सामाजिक लोकतन्त्र के उदय पर आधारित है, किन्तु पिछले दो दशकों में भारत ने पांच से सात प्रतिशत की जो वार्षिक आर्थिक दर हासिल की है, उसे बनाए रखना भी जरूरी है। इसने मध्यवर्ग का आकार तिगुना कर दिया है, जिसके एक पीढ़ी की वृद्धि के साथ भारतीय जनसंख्या के आधे हिस्से के बराबर हो जाने की सम्भावना है। अंत में, यह शान्त क्रान्ति, उन राजनैतिक पार्टियों और राजनीतिज्ञों, जो भारतीयों

का खून चूस रहे हैं, में लगातार हो रहे आकस्मिक परिवर्तनों की अपेक्षा ऐतिहासिक महत्व की है।

मैंने अनुकरण किया और पाया कि डिफो के 'मेमवार ऑफ एकैवेलियर' की जो पद्धति है, उसमें लेखक के महान राजनीतिक और सामाजिक घटनाओं के विवरण, एक व्यक्ति के निजी अनुभवों के रूप में व्यक्त किए हैं, हालांकि यह आत्मकथा नहीं है। मैंने निश्चय किया है कि मैं इस कहानी को प्रथम पुरुष में कहूंगा। मैं प्रथम पुरुष के अनुभवों पर विश्वास करता हूं क्योंकि उसके अनुभव ईमानदारी से प्राप्त किए हुए होते हैं, चाहे वह हाशिये में हो; वे न केवल अनूठे ही होते हैं बल्कि यही इतिहास के निश्चित आंकड़े भी होते हैं, जिन पर हम इंसान होने के नाते अधिकार रखते हैं। इसके अतिरिक्त मैं यह नहीं चाहता कि राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा का यह विवरण शुष्क तथा उपदेशात्मक हो। मैं आर्थिक और सामाजिक विचारों के इस द्वन्द्व में अपने को झोंकना चाहता हूं।

जब मैं युवा था, तब हम लोग आधुनिक और नवीन भारत के जवाहरलाल नेहरू के सपने में गहरा विश्वास रखते थे। जैसे-जैसे समय बीतता गया- हमने पाया कि नेहरू द्वारा दिखाया गया आर्थिक रास्ता हमें एक अन्धे मोड़ की ओर ले जा रहा है, और हमारे सारे सपने हवा हो गए। जब हम समाजवाद की स्थापना करने निकले तो हमने पाया कि इसके स्थान पर राज्यवाद की स्थापना हो गई है। 1960 में जब मैं मैनेजर पद पर काम कर रहा था तब मैंने अपने आपको नौकरशाही नियंत्रण के घने जंगल में पाया। श्रीमती गांधी के निरंकुश शासन काल में, भ्रम से मुक्ति की हमारी समझ अपने चरम पर पहुंच गई। राजीव गांधी के प्रधानमन्त्री बनने पर आशा की हल्की-सी किरण दिखाई दी लेकिन वह भी अंधेरे में खो गई, जब हमने पाया कि उनमें वह सब नहीं था, जो चाहिए था। हमारी निराशाजनक मन:स्थिति का अन्त तब हुआ जब जुलाई 1991 में पी.वी. नरसिंह राव की अल्पमत सरकार ने स्पष्ट उदारीकरण की नीति की घोषणा की। यह एक प्रकार से हमारे लिए दूसरी स्वतन्त्रता थी, जिसमें हम लोग लोभी और निरंकुश शासन से आजाद होने जा रहे थे।

हालांकि 1991 के बाद के सुधार धीमे, अधूरे और हिचकिचाहट भरे थे, लेकिन फिर इन्होंने भारतीय समाज में कई आधारभूत और गम्भीर परिवर्तनों की प्रक्रिया को शुरू किया। यह भी उतना ही महत्वपूर्ण पड़ाव है, जितनी कि दिसम्बर 1978 में चीन में हुई डेंग की क्रान्ति। मतपेटियों की अर्द्धशताब्दी ने निम्न जातियों को भी समाज में बराबर के अधिकार प्रदान किए हैं, इसका अर्थ है कि सुधारों के फल को सबमें बराबर बांटा गया है। पिछले कुछ समय से विश्व औद्योगिक अर्थव्यवस्था से सूचना अर्थव्यवस्था में तब्दील हो गया है जो भारत के लाभ की दास्तान कहता है इसका पहला प्रमाण है सॉफ्टवेयर के क्षेत्र में हमारी अभूतपूर्व सफलता। लेकिन विडम्बना तो यह है कि अधिकतर भारतीय खासकर शासक वर्ग, इस बात को महसूस नहीं करते। अगर वे इसे महसूस करते हैं तो उन्हें शिक्षा के क्षेत्र में अधिक विनिवेश करना चाहिए और सुधारों को तेजी से क्रियान्वित किया जाना चाहिए।

इतिहास का कौतूहल पैदा करने वाला प्रश्न यह है कि हम औद्योगिक क्रान्ति लाने में असफल क्यो रहे? मार्क्स ने भविष्यवाणी की थी कि भारत और अन्य देशों में रेल औद्योगिक क्रान्ति को लाने में सहायक होगी। वास्तव में, पहले विश्व युद्ध के बाद बहुत से विचारों को हम छोड़ने को तैयार हो गए। 1914 के बाद भारतीय रेल व्यवस्था विश्व में तीसरे स्थान पर थी, विश्व में सबसे अधिक जूट उत्पादक देश भारत था, सूती कपड़ा उद्योग में यह चौथे स्थान पर था, सबसे बड़ी नहर प्रणाली यहां थी और विश्व व्यापार में इसकी ढाई प्रतिशत की भागीदारी थी। इससे व्यापारी वर्ग, उद्योगपति बनने के लिए तैयार था। युद्ध के बाद औद्योगीकरण, वास्तव में काफी तेजी के साथ हुआ। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान जी.डी. बिड़ला, कस्तूरभाई लालभाई और अन्य उद्यमियों ने व्यापार में बहुत मुनाफा कमाया जिसे उन्होंने नए उद्योगों में लगा दिया। 1913-38 के बीच हमारी कुल उत्पादन क्षमता बढ़कर 5.6 प्रतिशत वार्षिक हो गई थी जो कि विश्व के 3.3 प्रतिशत के औसत से काफी अधिक थी। 1947 तक उद्योग का हिस्सा 3.4 प्रतिशत से 7.5 प्रतिशत हो गया था। यह हमारे कृषि समाज में विस्तृत बदलाव लाने के लिए पर्याप्त नहीं था। आधुनिक उद्योग पैंतीस करोड़ की जनसंख्या में से केवल पच्चीस लाख लोगों को ही रोजगार उपलब्ध करवा सके। हमारी मुख्य समस्या कृषि थी जो स्थिर रही, जबकि कृषि बचत और पर्याप्त खाद्य संसाधनों को तेजी से बढ़ती हुई शहरी जनसंख्या के लिए उपलब्ध कराए बिना औद्योगिक क्रान्ति सम्भव ही नहीं है।

आजादी हासिल करने के बाद जवाहरलाल नेहरू और उनके सहयोगियों ने राज्य रूपी एजेंसी द्वारा औद्योगिक क्रान्ति लाने का प्रयास किया। उन्हें निजी उद्यमियों पर विश्वास नहीं था, इसलिए उन्होंने राय को अपना उद्यमी बनाया। कोई आश्चर्य की बात नहीं थी कि वे असफल हुए और भारत आज उनके किए की सजा भुगत रहा है।

जब मैं कालेज में था, तब हम भारत के बारे में इस प्रकार की बातें किया करते थे जैसे कि वह कोई हवाज जहाज हो, और यह आश्चर्य करते थे कि यह विकास के क्षेत्र में कब उड़ान भरेगा। किसी ने भी नहीं पूछा कि क्या यह कभी उड़ भी पाएगा; बार-बार एक ही प्रश्न उभरकर सामने आता था 'कब'? अर्थशास्त्रियों ने बताया कि उड़ान भरने के दौरान राष्ट्रीय निवेश दस से बारह प्रतिशत बढ़ जाएगा। खुशकिस्मती से, भारत में हमारी निवेश दर पिछले दो दशकों में बीस प्रतिशत से कहीं अधिक है, और अभी तक हमने अपने समाज में कोई परिवर्तन नहीं किया है। क्यों? भारत के मन्त्र में कम-से-कम छह चीजों में गलतियां हैं। पहली, इसने अन्तर्मुखी आयात का रास्ता अपनाया, बनिस्बत इसके कि बहिर्मुखी निर्यात बढ़ाने वाले मार्ग के; इस प्रकार से इसने स्वयं ही विश्व व्यापार में स्वयं का हिस्सा अस्वीकारा यानी सफलता या सौभाग्य जो युद्ध के बाद का युग अपने साथ लाया था। दूसरा, इसने ठोस, अयोग्य तथा एकाधिकार रखने वाले सार्वजनिक क्षेत्र की स्थापना की, जिसने इसके स्वतंत्र रूप से कार्य करने की स्वायत्तता अस्वीकार की। इसलिए, हमारे निवेश बुद्धिमानी वाले नहीं थे और हमारे पूंजी-उपज सम्बन्ध अनुपजाऊ रहे।

तीसरा, इसने निजी व्यवसायों को सबसे अधिक बुरे तरीके से नियन्त्रित किया, जिससे बाजार में प्रतियोगिता घट गई। इसके अतिरिक्त हमारे वाणिक-व्यापारी भी फुटकर नहीं थे और नया परिवर्तन लाने में बहुत धीमे थे। चौथा, इसने विदेशी पूंजी को हतोत्साहित किया तथा स्वयं के लिए प्रौद्योगिकी के फायदों तथा विश्व-स्तर की प्रतियोगिता को अस्वीकार किया। पांचवां, इसने अपने श्रमिक वर्ग को उस बिन्दु तक पूर्ण रूप से सन्तुष्ट किया जहां हमारी उत्पादकता बहुत धीमी है। छठा और शायद सबसे महत्वपूर्ण, इसने अपने आधे बच्चों की शिक्षा की उपेक्षा की है, खासकर लड़कियों की।

यह कहानी उस विश्वासघात की है जो भारतीय शासकों ने पिछली दो पीढ़ियों के साथ किया। वे हठपूर्वक विकास के गलत ढांचे के साथ डटे रहे और उन्होंने लोगों के विकास और नौकरी के अवसरों को दबा दिया तथा उन्हें गरीबी से उबरने के अवसरों से वंचित रखा। खासकर 1970 के बाद जबकि इसका स्पष्ट प्रमाण था कि यह रास्ता कहीं नहीं जाता। यह विडम्बना है कि जिन स्त्रियों और पुरुषों ने इस व्यवस्था की स्थापना की और उनकी बेतहाशा प्रशंसा भी हुई। इस सबके बाद वे लोकतन्त्र को संस्थागत करने में सफल हुए। दूसरी विडम्बना यह कि गरीबों के नाम पर इन मूर्खों ने अपना रास्ता बदलने से इनकार किया। भारतीय समाजवाद की सबसे बुरी बात यह रही कि इसने गरीबों के लिए बहुत कम काम किया जबकि पूर्वी एशिया के बाकी देशों ने इससे कहीं बेहतर काम किया। यहां तक कि चीन ने भी पिछले पचास साल की सब खलबलियों के बावजूद अपने लोगों की जिन्दगी को बेहतर बनाने के लिए कहीं ज्यादा अच्छे काम किए। हमारी असफलता का कारण खराब व्यवस्था अधिक रही है और विचारधारा कम।

इसलिए भारत की प्रतिव्यक्ति आय 380 डॉलर है, जो कि 157 देशो में 124वें स्थान पर आती है। 1960 में यह चीन से अधिक थी परन्तु आज यह उसकी आधी है। यद्यपि क्रय-शक्ति की तुलना में भारत की आय 1,580 डॉलर तक बढ़ गई है परन्तु यह इसे विश्व के मंच पर ऊपर उठाने के लिए पर्याप्त नहीं है। अंतर्राष्ट्रीय गरीबी रेखा की प्रति डॉलर प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन आय के अनुसार भारत की आधी जनसंख्या गरीब है। एक भारतीय की जीवन जीने की औसत आयु तिरेसठ साल है जो कि बहुत से गरीब देशों से कम है। प्रति एक हजार बच्चों में से पैंसठ मर जाते हैं जो कि बहुत ज्यादा है। दो तिहाई बच्चों का वजन कम है यानी वे कुपोषण के शिकार हैं। दस में चार भारतीय अशिक्षित हैं। इसलिए भारत यूएनडीपी (UNDP) की मानव विकास सूची के अनुसार 174 देशों में 134वें स्थान पर है. भारत का प्रदर्शन अच्छा नहीं है। भारत के समतुल्य देशों ने इससे कहीं बेहतर प्रदर्शन किया है।

भारत के बीते दशकों की इस कथा में सबसे ऊपर है भारतीय शासन वर्ग के सम्भ्रांत व्यक्ति जैसे राजनीतिज्ञ, लोकसभा सदस्य, वरिष्ठ नौकरशाह और आर्थिक योजनाकार जिन्हें अपने किए पर कोई पश्चाताप नहीं है। वे आत्मसन्तुष्टि के साथ उदघोषणा करते हैं कि आखिरकार हमने हिन्दू विकास दर साढ़े तीन प्रतिशत की तुलना में कहीं बेहतर प्रदर्शन किया है, शब्दकोश में इस

भाग्यवादी वाक्य से ज्यादा फेल कोई अभिव्यक्ति नहीं है। उन्हें इसमें कोई शर्म महसूस नहीं होती कि वे देश जिनके पास भारत की तुलना में प्राकृतिक और मानवीय संसाधन कार्यक्षमता का सिर्फ एक छोटा-सा हिस्सा है, उन्होंने विश्व के अत्यधिक उन्नत समाजों में से कुछ की रचना की है। उन्होंने अपने अधूरे और धीमे व कुंठित सुधारों को न्यायोचित ठहराने के लिए हाल ही में हुई पूर्वी एशिया की गड़बड़ियों का इस्तेमाल किया है। एक व्यक्ति की भूल का खामियाजा पूरा परिवार भुगतता है, जबकि एक शासक असफल होता है तो यह राष्ट्रीय विपत्ति होती है।

भारतीय परम्परा में धन कमाना विशेष महत्व नहीं रखता। वैश्य या व्यापारी वर्णों के क्रम में ब्राह्मणों और क्षत्रियों के बाद तीसरे स्थान पर आते हैं और श्रमिक शूद्रों से केवल एक कदम आगे हैं। आर्थिक सुधारों के अन्तर्गत धन कमाना सम्मानीय हो गया है और ब्राह्मणों और क्षत्रियों के बच्चे भी एम.बी.ए. की डिग्रियां लेने लगे हैं और वे उद्यमी बनने की दिशा में अग्रसर हैं। भारत सामाजिक क्रान्ति की प्रतिस्पर्धा के बीच में है। 1868 की मेजी पुनर्स्थापना के दौरान जापान के व्यापारी वर्ग की उन्नति ने जापान को अल्पविकसित वर्ग के द्वीपों से आधुनिक समाज व अर्थव्यवस्था में बदल दिया है। छोटे गांवों ने भी इसे अपनाया। कुछ साल पहले मद्रास से पांडिचेरी की यात्रा के दौरान मैं एक गांव की सड़क के किनारे छोटी-सी चाय की दुकान पर रुका। जहां पर चौदह वर्षीय राजू मेज साफ कर रहा था। उसने हमें दक्षिण भारत की बढ़िया चाय और वड़ा प्रस्तुत किए। राजू ने बताया कि यह उसका समर जॉब है और इससे चार सौ रुपये प्रति माह मिलते हैं जो कि उसको कंप्यूटर सीखने के लिए काफी हैं, जिसके लिए वह शाम को पड़ोस के गांव जाता है। अगली गर्मियों के लिए उसकी आंटी ने मद्रास में उसके लिए एक कम्प्यूटर कम्पनी में नौकरी की व्यवस्था कर रखी है।

मैंने पूछा, "तुम बड़े होकर क्या करोगे?" राजू बोला, "मैं एक कम्प्यूटर कम्पनी चलाऊंगा।" उसने यह निश्चय तब किया जब उसने टेलीविजन पर 'बिलगे' को देखा। जिसकी एक सॉफ्वेयर कम्पनी है और जो दुनिया के सबसे अमीर आदमियों में से एक है।

सामन्ती उत्तर प्रदेश के मध्य में बारतोली में, जो कि 600 परिवारों वाला एक सोया हुआ गांव है। यहां के एक सरकारी अध्यापक ने शोक प्रकट किया कि "सभी पैसे से मतलब रखने वाले होते जा रहे हैं। यहां तक कि चमड़े का काम करने वाले मजदूर जो कि समाज के पलड़े पर बहुत निचले स्तर पर हैं, वे भी अपने बच्चे मेरे स्कूल से निकालकर नए उभरे प्राइवेट इंग्लिश स्कूलों में डालते जा रहे हैं जो कि छह माह पहले ही खुला है। क्या तुम विश्वास करोगे कि वो अपनी मेहनत की कमाई में से तीस रुपये प्रतिमाह वहां खर्च करने को तैयार है जबकि मेरे स्कूल में सिर्फ एक रुपया लगता है।" वे उसका स्कूल छोड़ रहे हैं क्योंकि वे टेलीविजन में देखते हैं इंग्लिश सीखना चाहते हैं, वे अमीर बनना चाहते हैं। यह तब होता है जब निम्न जातियों पर दया की जाती है। कोई भी काम करना नहीं चाहता।

फतेह सिंह, जो कि शर्माते हुए दरवाजे से बाहर खड़ा था और हमारे साथ इसलिए नहीं बैठा था क्योंकि वह एक नीची जाति का है, ने आगे कहा, "श्रीमान वफादारी तो बिलकुल नहीं बची है।" उसने शिकायत की कि उसका भतीजा विकास पास ही खुर्जा में स्टील के ट्रंक बनाने की फैक्टरी खोलना चाहता है, बनिस्बत अपने पिता की तरह राज्य परिवहन की बस का कंडक्टर बनने के। भारतीय धीरे-धीरे यह अनुभव कर रहे हैं कि आर्थिक सुधार केवल शुल्क स्तर, अव्यवस्था और संरचनात्मक संयोजन के बारे में नहीं है। ये विचारों की उस क्रान्ति के विषय में है जो कि लोगों का दृढ़संकल्प बदल रही है और भारतीय समाज को 'बनियाकरण' की ओर ले जा रही है। अमीर देशों से आने वाले कल के सूचना उद्योगों में विशिष्टीकृत होने की अपेक्षा थी और गरीब देशों के उद्योगों में बीते हुए कल की न्यूनतम मजदूरी से। यह एक सिद्धांत था, परंतु कोई बंगलोर, हैदराबाद, चेन्नई, गुड़गांव और पुणे को बताना भूल गया था। इन दिनों हम प्रतिदिन नई 'सूचना अर्थव्यवस्था' की सफलताओं के विषय में पढ़ते हैं और हम अचरज करेंगे, अगर हम अन्त में वहां पहुंच जाएंगे। बैंगलोर में 395 सॉफ्टवेयर कम्पनियां हैं उनमें से अधिकतर के उपभोक्ता अमेरिका में हैं, जो अपना कार्यालय छोड़ने से पहले अपनी जरूरतें ई-मेल कर देते हैं। जब वे सो रहे होते हैं तो भारतीय इंजीनियर उनकी समस्याओं का समाधान ढूंढते हैं। अगली सुबह जब वे अपने कॉफी मग लेकर अपने डेस्क पर आते हैं और जब वे लॉग ऑन (इंटरनेट से जुड़ना) करते हैं तो उन्हें उनके उत्तर मिल जाते हैं।

इनमें से एक कम्पनी इनफोसिस है, जिसने 500 डॉलर के साथ शुरुआत की थी। फरवरी 2000 में इसका मूल्य 15.4 अरब डॉलर थी और सौ से ऊपर इसके मैनेजरों में से हरेक का मूल्य दस लाख डॉलर से अधिक है। दूसरी है एन आई आई टी, जिसने भारतीय बाजार में 750 कम्प्यूटर स्कूल स्थापित किए हैं (मैकडोनाल्ड के हैमबर्गर की तरह) और इकतीस देशों में इसकी योजना है, कम्प्यूटर शिक्षा के क्षेत्र में विश्व स्तर पर एकाधिकार प्राप्त करने की। पिछले दशक में इसने 750 उद्यमी तैयार किए हैं और दस हजार नौकरियां। 22 फरवरी 2000 को अजीम प्रेमजी फोर्ब्स के क्रमानुसार विश्व के तीसरे अमीर आदमी थे, जो उनकी सॉफ्टवेयर कंपनी के बाजार में पूंजीकरण पर आधारित थी। जो कि 46 अरब डॉलर या भारत के सकल घरेलू उत्पाद के 11.3 प्रतिशत से ऊपर था। अपने धन से प्रेमजी भारत के वित्तीय घाटे का भुगतान कर सकते हैं और फिर भी उनके पास बचा रहेगा।

आर्थिक जानकारी के क्षेत्र में सैकड़ों उद्यमकर्ताओं की सफलता में युग चेतना प्रतिबिम्बित होती है। 1980 में सुभाषचन्द्र एक चावल व्यापारी हुआ करता था और उसने फरवरी 2000 में लगभग साठ हजार करोड़ रुपये के विश्वव्यापी संचार साम्राज्य की स्थापना की। वह एशिया के मर्डोक कहलाए। बैंगलोर में एक एक छोटी दो साल पुरानी कम्पनी 'आरमीडिया' ने 1999 में डिजीटिल टेलीविजन के लिए चिप बनाने में सफलता हासिल की। अमेरिका की ब्रॉडकॉम ने इसे 670 लाख डॉलर में खरीद लिया और इसके पैंतालीस कर्मचारियों को उनकी कल्पना से कहीं अधिक अमीर

बना दिया। रेनबैक्सी, डॉ .रेड्डी की लैब, सिपला और वॉकहार्ड दवा-उद्यम में विश्व स्तर पर सफलता प्राप्त कर रही हैं। मुम्बई में क्रैस्ट कम्युनिकेशंस उत्तरी अमेरिका से बाहर उन दो स्टुडियो में से एक हैं जिसे थ्रीडी एनिमेशन फिल्म बनाने में विशेषज्ञता हासिल है और इसने हाल ही में हॉलीवुड से एक स्टुडियो से एनिमेटेड फीचर फिल्म बनाने का ठेका प्राप्त किया है। राजेश जैन की इंटरनेट साइट इतनी आकर्षक थी कि सत्यम इंफोवेज ने उसे 499 करोड़ रुपये में खरीद लिया जो कि उन बीस लाख रुपयों का एक अच्छा प्रतिलाभ था जो उसने पांच साल पहले निवेश किए थे। पूरे विश्व में तकरीबन चालीस हजार भारतीय ऑनलाइन रिमोट सेवाओं में कार्यरत हैं जैसे कि इलाज संबंधी आंकड़ों की नकलनवीसी, किताबों का सम्पादन, डिजिटल मानचित्र बनाना, उपभोक्ताओं की लेखा-जोखा सूची बनाना आदि। मैकिंजी परियोजना जिसके अन्तर्गत नौकरियों के अवसर प्राप्त हो सकेंगे और जिससे कि वर्ष 2010 तक 5000 करोड़ डॉलर का राजस्व कमाया जा सकेगा।

ये उद्यमी चमत्कारी सुधारों के बाद के भारत के नए सामाजिक समझौते के भाग हैं। नए रईसों ने धन-सम्पदा विरासत में नहीं पाई है, उन्होंने यह सब अपने बुद्धि-कौशल, मेहनत और व्यावसायिक निपुणता के बलबूते हासिल किया है। दूसरी ओर, पुराने व्यापारी घराने सुधारों द्वारा निर्मित प्रतियोगी अर्थव्यवस्था में संघर्ष कर रहे हैं। राहुल बजाज की दुविधा का कारण है पुरानी कम्पनियों की विशिष्टता। बजाज स्पष्ट रूप से विश्व में दूसरे नम्बर के सबसे बड़े स्कूटर और दोपहिया बाजार का नेतृत्व करता है। लेकिन अभी तक वह विश्व मंच पर आने के लिए अपना अगला कदम उठाने में असमर्थ है। इसने घरेलू बाजार में बखूबी जापानी प्रतियोगियों की चुनौती का मुकाबला किया है। इनके पास बहुत पैसा है। यदि इसके सभी प्रतियोगियों को इकट्ठा कर दिया जाए तो भी यह सबसे अधिक मुनाफा कमाता है। परन्तु यह अपने उत्पादन का केवल तीन प्रतिशत ही निर्यात करता है। अपने अपार लाभ के बावजूद बजाज में साहस की कमी है कि यह विश्व बाजार में होंडा और यामहा के बाजार पर अपना कब्जा कर सके।

एक दशक पहले कोई भी राहुल बजाज की संकुचित मानसिकता की आलोचना के बारे में सोच भी नहीं सकता था। सरकारी सिद्धांतों ने इसे विदेशी व्यापार, विदेशी कम्पनी की इक्विटी खरीदने, घटकों का उचित दर पर आयात, इच्छा के सामर्थ्य बढ़ाने या बिना लम्बी अनुमोदन प्रक्रिया के नई तकनीक खरीदने की अनुमति नहीं दी थी। राहुल बजाज की मानसिकता शुद्ध स्थानीय न्यूनतम अर्थव्यवस्था वाली थी। दस सालों तक उसने वह सब कुछ बेचा जिसका उसने उत्पादन किया था क्योंकि मांग हमेशा आपूर्ति से अधिक थी। इस प्रकार, वह न तो अपना बाजार ही बढ़ा सका और न ही उसने उत्पाद के विकास के लिए नए गुर ही सीखे। राहुल बजाज नेहरू के समाजवाद और लाइसेंस राज की उपज है। चालीस साल की बन्द अर्थव्यवस्था के परिणाम इस तक भी पहुंच गए हैं। वह प्राचीन भारत का प्रतीक है, जो कि भद्दे ढंग से कमजोर

आधारवाली संरचना, रोड़े अटकाने वाले नौकरशाहों, ऊंची दर ब्याजी कीमतों और फैक्टरी विचारों से बिंधा हुआ था।

राहुल बजाज की तरह ही, पुराने समुदाय भी उस पद्धति की उपज हैं जो उन्होंने कायम नहीं की है। उनमें विश्वव्यापी अर्थव्यवस्था में सफलता प्राप्त करने का कौशल नहीं है। सुधारों के इतने साल बाद भी वे अभी तक लड़खड़ा रहे हैं। विश्वव्यापी अर्थव्यवस्था में सफलता के लिए तीन चीजों की आवश्यकता होती है मानव संसाधनों में भारी निवेश, उत्पादन सुधार का जुनून और ग्राहकों की हर तरह की जरूरतों को ध्यान में रखने वाला रवैया। ये कम्पनियां चतुर हैं और वे यह सब समझती हैं। तब, उन्होंने इन योग्यताओं को प्राप्त क्यों नहीं किया? इसका जवाब यह है कि जो आप सफलतापूर्वक कर रहे हैं, उसे बदलने के लिए समय लगता है। किंतु यथार्थ में उनके पास समय था ही नहीं।

इक्कीसवीं सदी की शुरुआत जोश के साथ हुई है। दो विश्वव्यापी सम्मान मिले हैं जो कि, लाभकारी दृष्टि से भारत के पक्ष में जाते हैं और जिन्होंने यह उम्मीद जगाई कि शायद हम विकास के मार्ग पर आगे बढ़ सकें और ऊपर उठ सकें। पहली, उदार क्रान्ति जिसने पिछले दशक में पृथ्वी को बुहार दिया है, जो अर्थव्यवस्थाएं पचास वर्षों से अलग-थलग पड़ी थीं, उन्हें मुक्त अर्थव्यवस्था बना दिया है और उन्हें शानदार तरीके से एक विश्वव्यापी अर्थव्यवस्था के रूप में एकीकृत कर दिया गया है। भारतीय आर्थिक सुधार इसी रुझान का हिस्सा हैं। वे नियन्त्रणों व भारतीय उद्यमियों की लम्बे समय से चली आ रही दमनकारी नीतियों से भी प्रतिस्पर्धा कर रहे हैं। वे मुख्य रूप से युवाओं के माध्यम से राष्ट्रीय विचारधाराओं को परिवर्तित कर रहे हैं क्योंकि हमें वणिक समुदाय प्रदान किए गए हैं, इसलिए हम विश्वव्यापी रुझानों का फायदा उठाने के लिए बेहतर स्थिति में हैं। व्यापारी जन्म से ही चक्रवर्ती ब्याज की शक्ति को समझते हैं, वे जानते हैं कि किस प्रकार पूंजी जमा की जाती है। इंटरनेट ने खेल के इस मैदान को और भी विस्तृत कर दिया है ताकि कोई भी साहसी, प्रेरित भारतीय उद्यमी स्वयं अपना भविष्य लिख सके।

इसी दौरान, सूचना अर्थव्यवस्था भी विश्व को बदल रही है, यह दूसरा विश्वव्यापी रुझान है। हम शायद ठठेरे नहीं हैं, परन्तु हम वैचारिक लोग हैं। इसलिए सूचना काल शायद हमारे लाभ के लिए ही खेल रहा है, सॉफ्टवेयर और इंटरनेट के क्षेत्र में हमारी सफलता इसका पहला प्रमाण है। हमने भी गूढ अवधारणाओं से 3,000 वर्षों तक कुश्ती लड़ी है। हमने शून्य का आविष्कार किया। आध्यात्मिक अन्तरिक्ष की ही तरह 'साइबर स्पेस' भी अदृश्य है। इसी प्रकार हमारी मूल योग्यता भी अदृश्य है। सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में शायद हमने वह इंजिन पा लिया है जो भारत की उड़ान का संचालन कर सके और हमारे देश को परिवर्तित कर सके।

अर्थशास्त्र में एडम स्मिथ की एक पुरानी अवधारणा है कि अगर एक अमीर और गरीब देश व्यापार द्वारा जोड़ दिए जाएं तो एक अंतराल के बाद उनके रहन-सहन का स्तर एक-सा हो जाना

चाहिए। इससे अन्तर्ज्ञान से प्राप्त चेतना स्थापित होती है, क्योंकि रहन-सहन का स्तर उत्पादकता पर निर्भर करता है और उत्पादकता निर्भर करती है प्रौद्योगिकी पर। जब गरीब राष्ट्र को अमीर राष्ट्र से जोड़ा जाता है, तो यह केवल उसकी प्रौद्योगिकी के नए रूपों को अपनाता है, पहिये को दुबारा आविष्कार किए बिना ही। उसके द्वारा, ये बहुत तेजी से विकास करते हैं और अन्ततः अपने लक्ष्य तक पहुच जाते हैं। यहां प्रश्न उठता है कि फिर पिछले पचास वर्षों में यह जुड़ाव क्यों नहीं हुआ है? इसका सीधा-सा जवाब है कि अमीर और गरीब जोड़े ही नहीं गए थे। हार्वर्ड के विद्वान, सैश और वारनर ने दुनिया का अध्ययन किया और निष्कर्ष निकाला कि तीसरी दुनिया के देशों में सत्तासी में से केवल तेरह देश ही विश्व व्यापार के लिए 'मुक्त' थे और उन्होंने छह गुणा तेजी से वृद्धि की है। 1970-1990 के बीच तेरह मुक्त देशों ने चौहत्तर बंद देशों की 0.7 प्रतिशत वृद्धि दर की तुलना में औरत 4.5 प्रतिशत प्रति-व्यक्ति प्रतिवर्ष की दर से वृद्धि की है। भारत दूसरे समूह में था और इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि बहुत से पूर्वी एशियाई देश इसमें थे। इस प्रकार जुड़ाव कुछ विशिष्ट अर्थव्यवस्थाओं के बीच में हुआ और उन्होंने असल में गरीबी को पराजित कर दिया।

अब विश्व परिवर्तित हो गया है, लेकिन 1970 में विश्व के केवल बीस प्रतिशत लोग मुक्त अर्थव्यवस्था में रहते थे, आज लगभग नब्बे प्रतिशत से अधिक का आंकड़ा है। इसलिए हम इसे भूमंडलीय विश्व कहते हैं। चीन और भारत ने विश्व जनसंख्या के तीसरे भाग से अधिक जनसंख्या के साथ पिछले दो दशकों में अपनी वृद्धि दर तेज की है। चीन (आठ-दस प्रतिशत) और भारत (पांच-सात ह्नतिशत) थी। यह वृद्धि दर यदि यूं ही कायम रखी जाती है और साक्षरता बढ़ती जाती है तो यह सम्भावना है कि वे लोग, जो गरीबी रेखा से नीचे हैं और प्रतिदिन एक डॉलर से कम पर गुजर करते हैं, की संख्या में पन्द्रह-बीस प्रतिशत कमी आ जाएगी। जो कि आज पचास प्रतिशत है। यह पूर्वी एशियाई देशों का अनुभव है। भारत की गरीबी पृथ्वी पर गरीबी का प्रतीक है। यदि भारत इस पर रोक की कोई आशा कर सकता है तो तीसरी दुनिया के राष्ट्र भी। चीन दस से पंद्रह वर्ष पूर्व ही यह लक्ष्य हासिल कर लेगा। शायद दस वर्ष पूर्व यह सोचा भी नहीं गया था। आज भी शायद यह आश्चर्यजनक ही लग सकता है, परन्तु हम इस प्रस्ताव पर गहराई से सोचने का साहस कर सकते हैं।

भारत की सबसे बड़ी विफलता मानव योग्यताओं को निर्मित करने में निहित है। जिसके परिणामस्वरूप चालीस प्रतिशत भारतीय निरक्षर रह गए हैं। अब हम यह पूरी तरह समझ गए हैं कि प्राथमिक शिक्षा और प्राथमिक स्वास्थ्य गरीबी उन्मूलन के दो शक्तिशाली साधन हैं। एक ही साथ, वहां इन सामाजिक वस्तुओं की मांग भी बढ़ रही है। भारतीय साक्षरता पिछले छह सालों में पहले ही दस प्रतिशत (बावन से बासठ प्रतिशत) बढ़ गई है। मुख्यतः यह इसलिए है क्योंकि निचले स्तर से साधारण जन का दबाव तथा सामाजिक लोकतंत्र ने, निचली जातियों के माध्यम से ऊपर की ओर गतिशीलता पैदा की है। उदारवादी आर्थिक सुधारों के लिए दबाव तथा मानव

योग्यताओं में निवेश संयुक्त रूप से यह आश्वासन दिलाते हैं कि लाखों भारतीय एक ही पीढ़ी के समय-अन्तराल में स्वयं को गरीबी के स्तर से ऊपर उठा लेंगे।

भारत ने पहले लोकतन्त्र को अपनाया, बाद में पूंजीवाद को, और इसी ने सारी गड़बड़ियां पैदा की हैं। 1950 में भारत पूर्ण विकसित गणतन्त्र बन गया था सामान्य मताधिकार और व्यापक मानव अधिकारों के साथ, परन्तु तब तक भारत बाजारी शक्तियों से मुक्त खेल के लिए नहीं खुला था। इस ऐतिहासिक विपरीत स्थिति का अर्थ है कि भारत के भविष्य का सृजन अनियन्त्रित पूंजीवाद द्वारा नहीं होगा परन्तु यह विकसित होगा। जाति, धर्म और गांव की रूढ़िवादी शक्तियों के दैनिक संवाद द्वारा वामपंथी और नेहरूवादी समाजवादी शक्तियां, भूमंडलीय पूंजीवाद की नई शक्तियां जिन्होंने राष्ट्र के बौद्धिक जीवन पर प्रभुत्व बना रखा है। लोकतन्त्र के ये लाखों समझौते, विविध स्वार्थपरकता, लोगों की झगड़ालू प्रवृत्ति, अनुशासन और सामूहिक रूप से कार्य करने का अभाव, इन सबके चलते हम यह कह सकते हैं कि आर्थिक सुधारों में धीमी गति से वृद्धि होगी। इसका अर्थ यह भी है कि भारत न तो उतनी तेजी से बढ़ेगा, जितनी तेजी से एशियाई बाघ और न ही उतनी तेजी से गरीबी और अज्ञानता का सफाया करेगा।

1991 से अर्थशास्त्री कुछ हताशा के साथ भारत पर धारियों की चित्रकारी करने का प्रयास कर रहे हैं, परन्तु इसने यह अनुभव नहीं कराया कि भारत कभी भी बाघ बन सकेगा। यह एक हाथी है जिसने मदमाते हुए आगे बढ़ना शुरू कर दिया है। इसे कभी भी प्रगति प्राप्त नहीं होगी। मगर इसका दम हमेशा बना रहेगा। एक बौद्ध कथा का कहना है कि "हाथी सब जानवरों में बुद्धिमान है, यही एक ऐसा जानवर है जो अपनी पिछली जिन्दगी भी याद रखता है और उसकी वह समझ भी लम्बी अवधि तक रहती है, उसके बाद वह सोचता है।" चीन का कहना है कि पूंजीवाद और लोकतंत्र के बीच उलटा क्रम यह सुझाता है कि भारत भविष्य में अधिक स्थिर, शान्तिपूर्वक परिवर्तन कर सकेगा। यह अधूरे पूंजीवादी माज के दुष्प्रभावों को भी नजरअन्दाज कर सकेगा। हालांकि भारत धीमा है फिर भी वह अपने जीवन-मार्ग को सभ्यता की विविधता, उदारता और आध्यात्मिक भूमंडलीय संस्कृति के घातक आक्रमण के विरुद्ध सुरक्षित रख लेगा। यदि यह ऐसा करता है तो यह एक सयाना हाथी है।